**SHODH SAMAGAM**

**ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)**

# संघवाद, गठबंधन सरकार और भारतीय राजनीति : एक अध्ययन

**अनिलकुमार यादव,** शोधार्थी, **रीता कुमारी,** Ph.D., शोध निर्देशक, विश्वविद्यालय राजनीति विज्ञान विभाग, विनोबाभावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

**ORIGINAL ARTICLE**

**Authors**

**अनिलकुमार यादव,** शोधार्थी

**रीता कुमारी,** Ph.D.

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 20/04/2024
Revised on : -----
Accepted on : 21/06/2024
Overall Similarity : 00% on 13/06/2024

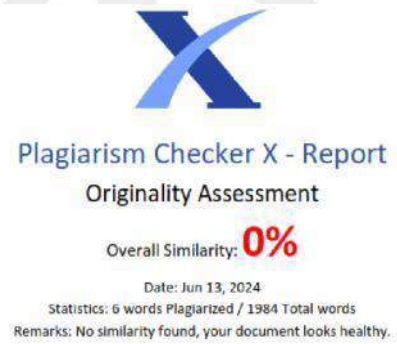


## शोध सार

*भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के अमृत महोत्सव वर्ष के भीतर हमारे गणतंत्र ने वास्तविक संघीय स्वरूप ग्रहण कर लिया है। समसामयिक परिस्थितियों के मुद्दे नजर यह कहा जा सकता है कि भारत में गठबंधन राजनीति के सबल होने से देश की संघीय व्यवस्था में विद्यमान कुरीतियाँ अब कम होने लगी है। केन्द्र सरकार के वर्चस्व वादी रवैये पर न सिर्फ अंकुश लगा है बल्कि केन्द्र सरकार के अहम निर्णयों और नीतिगत फैसलों में राज्य सरकारों की भागीदारी अनिवार्य रूप से बढ़ी है। अब क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भी केन्द्र सरकार की दिशा–दशा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि केन्द्र तथा राज्य सरकार एक–दूसरे का प्रतिद्वन्दी न होकर एक–दूसरे के पूरक हो गये हैं। केन्द्र–राज्य संबंधों के मध्य चिरकाल से चले आ रहे बाधक तत्व जैसे राज्यपाल के पद अनुच्छेद 356 अखिल भारतीय सेवाएँ जैसे मुद्दे अब या तो नेपथ्य में चले गये हैं या उनकी अब कोई प्रासंगिकता ही नहीं रह गयी है। हालांकि गठबंधन राजनीति को मर्यादा से अधिक आगे ले जाने का कुछ दलों का हठी प्रयास कई बार केन्द्रीय सरकार की न्यूनतम एवं अनिवार्य विषयों पर निर्णय लेने की क्षमता को भी कुन्द कर देता है। इस प्रकार एक ऐसी अनिर्णय की स्थिति केन्द्रीय स्तर पर उत्पन्न होती है जो किसी भी स्थिति में देश के सामाजिक–आर्थिक विकास एवं राजनीतिक कुटनीतियों के संचालन के लिए उपयुक्त नहीं मानी जा सकती है। इस प्रकार की कुछ विकृतियों के बावजूद भारतीय संघवाद लगातार एक के बाद दूसरी सफलता की ओर अग्रसर है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हमारे यहाँ संघवाद केवल केन्द्र तथा राज्य स्तर पर शक्तियों का विभाजन ही नहीं, अपितु बहुलवादी समाज की राष्ट्रीय जीवन पद्धति भी है। इसका स्वरूप बहुलवादी है प्रवृत्ति समायोजन वादी है।*

## मुख्य शब्द

*संघवाद, गठबंधन सरकार, भारतीय संविधान, बहुलवादी समाज, राष्ट्रीय दल, न्यायिक समीक्षा.*

## भूमिका

भारतीय संविधान द्वारा ही भारत में संघीय व्यवस्था की स्थापना की गयी है। हालांकि संविधान में कहीं भी संघीय शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है इसके बावजूद संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का बंटवारा स्वतंत्र न्यायपालिका विधि का शासन आदि ऐसे प्रावधान हैं जो भारत के संघीय स्वरूप को प्रतिविम्बित करते हैं। भारतीय संविधान के प्रावधानों पर नजर डाली जाये तो प्रतीत होता है कि इसमें संघात्मकता से अधिक एकात्मकता के लक्षण विद्यमान हैं जैसे राज्यपाल का पद, एकहरी नागरिकता, समवर्ती सूची, अवशिष्ट शक्तियाँ आदि। इसी कारण के.सी. व्हीयर द्वारा भारतीय संविधान को अर्धसंघीय (क्वेजाई फेडरल) बताया गया है। स्वतंत्रता संघर्ष का अनुभव और विभाजन के पीड़ा को ध्यान में रख कर संविधान निर्माताओं ने सोच–समझकर 'मजबूत केन्द्र' की स्थापना की थी। स्वतंत्रता के बाद 1967 तक के राजनीतिक व्यवस्था को रजनी कोठारी द्वारा भी 'दी कांग्रेस सिस्टम' की संज्ञा दी गयी। 1967 के राज्य विधान सभा चुनाव में पहली बार आठ राज्यों में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिल पायी परिणाम स्वरूप भारतीय राजनीति में गैर–कांग्रेसी दलों का उभार शुरु हुआ। 1977 में पहली बार केन्द्र में गैर–कांग्रेसी सरकार बनी लेकिन गुटबंदी के कारण यह सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी तथा पुनः कांग्रेस का वर्चस्व स्थापित हो गया।

## गठबंधन की राजनीति एवं भारतीय संघवाद

1989 का आम निर्वाचन भारतीय राजनीति के लिए निर्णायकमोड़ साबित हुआ, इसके बाद भारतीय राजनीति में गठबंधन की राजनीति का इसके प्रभाव सूत्रपात हुआ जिसके परिणाम स्वरूप क्षेत्रीय दलों को संतुलनकारी भूमिका मिल गयी। इससे देश में एक अभूत पूर्व संघात्मक विन्यास तैयार हो गया है। अब ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संघीय व्यवस्था के बारे में जो विवाद रहा है अब वह अदृश्य होता जा रहा है। भारतीय संघवाद का सफर केन्द्रीकृत संघवाद से शुरु होकर सहयोगी संघवाद एवं प्रतिस्पर्धी संघवाद से गुजरता हुआ अब वास्तविक संघवाद के रूप में स्थापित हो रहा है। सर्वप्रथम एम.पी. सिंह ने भारतीय संघवाद के इस बदलते स्वरूप को''महा संघवाद की ओर अग्रसर'' (Towards Greater Faderlisation) के रूप में बताया है। इसका आधार उन्होंने दलीय व्यवस्था में हा रहे परिवर्तन को माना है। दलीय व्यवस्था को ही आधार मानते हुए डगल सवरनी ने तो भारतीय संघवाद की यात्रा को अर्धसंघ से चलकर अर्ध परिसंघ की ओर अग्रसित बताया है।

1990 के बाद भारतीय संघीय व्यवस्था में परिवर्तन के प्रमुख लक्षणों को तीन बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। पहला लक्षण यह है कि 1990 के बाद राज्यों में राष्ट्रपति शासन अर्थात् अनुच्छेद 356 के प्रयोग में कमी आयी है। 1950 से 1989 तक 39 वर्षों में अनुच्छेद 356 का प्रयोग 79 बार हुई। इंदिरा गांधी के 15 वर्ष के कार्य काल में 58 बार राष्ट्रपति शासन की घोषणा की गयी। जनता पार्टी ने अपने छोटे से शासन काल में 16 बार राष्ट्रपति शासन की घोषणा की, किंतु अब परिस्थिति बदल चुकी है। 1990 से 2009 तक राष्ट्रपति शासन की घोषणा 31 बार की गयी। ध्यातव्य है कि राष्ट्रपति शासन में गिरावट आयी है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार के प्रकृति में बदलाव को दृष्टिगत किया गया। अब सतारुढ़ गठबंधन सरकार के घटक दलों द्वारा दबाव बनाए जाने के बावजूद केन्द्रीय सत्ता के द्वारा ऐसे दबावों को दर किनार किया जा रहा है। यह संघात्मकता की बढ़ती शक्ति का ही प्रमाण है।

संघात्मकीकरण में वृद्धि का दूसरा लक्षण राज्यों की विधायी प्रक्रिया में केन्द्र के हस्तक्षेप में कमी आना है। यह कमी इसलिए नहीं आई है कि क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व संघीय सरकार में बढ़ता जा रहा है, बल्कि यह कमी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति पर विराम लगा रहा है। राष्ट्रीय दलों की ताकत क्षेत्रीय दलों पर निर्भर करने लगी है। राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय दलों की शर्तों पर समझौता करने को विवश होते जा रहे हैं। पहले राष्ट्रपति का चयन केवल सत्ताधारी दल के निर्णय पर आधारित होता था पर अब क्षेत्रीय दलों के समर्थन के बिना राष्ट्रपति का चयन संभव नहीं है।

संघात्मकीकरण की बढ़ती मात्रा को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। गठबंधन राजनीति क्षेत्रीय दलों को यह अवसर उपलब्ध करा रही है कि वह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को अपनी शर्तों के अनुसार संचालित करे या वे कम–से–कम अंतर्राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करने वाले दबाव कारी संगठन के रूप में अवश्य काम करते हैं। भारत–अमेरिका परमाणु समझौता के विरोध में वामपंथी दलों ने कांग्रेस से समर्थन वापस ले लिया। 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) के साथ समझौते का भी कई राज्य सरकारों ने विरोध किया। हाल ही में भारत–बांग्ला देश तीस्ता नदी जलविवाद संबंधी समझौता पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के दवाव के कारण नहीं हो पाया। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि अब न केवल क्षेत्रीय दल बल्कि राष्ट्रीय दलों की भी प्रादेशिक इकाइयाँ अपने–अपने राष्ट्रीय नेतृत्व से काफी हद तक कार्यात्मक स्वायत्तता प्राप्त करती जा रही हैं।

## संघीय व्यवस्था में बदलाव के कारण

- **दलीय व्यवस्थाः** दलीय व्यवस्था में हुए परिवर्तन को भारतीय संघवाद के बदलते स्वरूप का प्रमुख कारण माना जा सकता है। 1989 के लोक सभा चुनाव से शुरु हुई गठबंधन सरकार का दौर आज तक जारी है। समसामयिक संदर्भ में राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका में वृद्धि हो रही है। क्षेत्रीय दल भारत की विशाल विविधता पूर्ण एवं बहुलवादी संस्कृति के पोषक हैं। इन दलों का राष्ट्रीय राजनीति में पदार्पण से अब क्षेत्रीय समस्याओं का हल ज्यादा सरल हो गया है जो राष्ट्रीय दलों द्वारा ध्यान नहीं दिया जाता था। इस प्रकार दलीय व्यवस्था में परिवर्तन ने भारतीय राजनीति को नई दिशा प्रदान किया है। इस गठबंधन राजनीति के दौर में गठबंधन सहयोगियों की जितनी आवश्यकता विपक्षी दलों को है उससे कहीं ज्यादा आवश्यकता सत्ताधारी दल को है। अतः यू.पी.ए. (यूनाइटेड प्रोग्रेसिवएलायंस) हो या एन.डी.ए. (नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस)दोनों को ही अधिक–से–अधिक सहयोगी दलों की आवश्यकता है जिससे कि वे सत्ताधारी दल बनने के लिए आवश्यक बहुमत जुटा सकें। अंततः यह कहा जा सकता है कि एक समय था जब राज्य संबंधी अधिकांश निर्णय दिल्ली में होती थी और राज्य सरकार उन निर्णयों को लागू करने वाले मशीन मात्र बन कर रह गये थे, किंतु अब इसके विपरीत की स्थिति भी दिखाई देती है जिसमें केन्द्र सरकार के विभिन्न मुद्दों के बारे में निर्णय राज्यों की राजधानियों में लिए जा रहे हैं।
- **न्यायिक व्यवस्था में परिवर्तनः** भारतीय उच्चतम न्यायालय के इतिहास में पहला महत्वपूर्ण मोड़ 1967 में गोलकनाथ मामले में आया तो दूसरा मोड़ केशवा नन्दभारती बनाम करेल राज्य (1973) में आया। इस वाद में संविधान के आधारभूत ढ़ांचा का सिद्धांत दिया गया। 1994 में एस.आर. बोम्मई बनाम भारतीय संघ मुकदमें में भारतीय संघीय व्यवस्था को संविधान का आधारभूत ढांचा माना गया। इस वाद में न्यायालय ने राज्यों में राष्ट्रपति शासन की बढ़ती प्रवृत्ति को रोकने का प्रयास किया। इस निर्णय के तहत न्यायालय ने अनुच्छेद 356 के प्रयोग को भी न्यायिक समीक्षा के अधीन ला दिया। इससे पहले अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन न्यायालय की समीक्षा के बाहर का विषय था। इसे केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत राजनीति कम सला माना जाता था। केन्द्र–राज्य संबंधों में राज्य सरकारों की स्वायत्तता की दिशा में बढ़ते हुए आई. आर. को यल्हो बनाम तमिनाडु राज्य वाद (2007) में न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अगर कोई कानून 24 अप्रैल 1973 के पश्चात् नौवीं अनुसूची में डाला गया है तथा उससे आधारभूत संरचना नष्ट होती है तो उसकी भी न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। इसके बाद कई मामलों में राष्ट्रपति शासन लगाने के केन्द्र के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने असंवैधानिक घोषित कर दिया।
- **नयी आर्थिक नीति (एल.पी.जी.):** 1991 में नरसिम्हा राव सरकार द्वारा नयी आर्थिक नीति अर्थात नव उदारवाद की नीति को अपनाया गया। इसके तहत सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के बीच साझेदारी पर बल दिया गया। आज उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के दौर में राज्यों से यह उम्मीद की जा रही है कि वे आर्थिक सुधार एवं विकास के मामले में नयी जिम्मेदारी संभालें। संसाधनों का प्रबंधन सार्वजनिक हो या निजी देशी या विदेशी पूंजी जुटाने की बात हो राज्य सरकार अपने स्तर से पहल करें। विदेशीपूंजी पतियों को अपने राज्य में निवेश करने के लिए आमंत्रित करें।

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को अब तक पूर्णतः राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया था पर केन्द्र सरकार द्वारा 1992 में 73 वाँ एवं 74 वाँ संविधान संशोधन कर पंचायती राज व्यवस्था को नयी दिशा दी गयी। पंचायत राज और नगर राज की संस्थाओं में अनेक नये पहलुओं का पहली बार समावेश करके उनका संस्थानीकरण किया गया। राज्य स्तर पर स्थानीय निकायों में नियमित रूप से चुनाव कराने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग तथा उन्हें नियमित अनुदान देने के लिए राज्य वित्त आयोग का प्रावधान किया गया। इस प्रकार पंचायती राज व्यवस्था भारतीय संघीय व्यवस्था का तीसरा स्तम्भ बन गया है।

## निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से यह प्रतीत होता है कि स्वतंत्र्योत्तर काल से दशकों में भारतीय संघ के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। संविधान निर्माताओं ने देश की विविधताओं और विभिन्नताओं के मद्दे नजर जिस प्रकार के संघीय स्वरूप को अपनाया था उसमें कई प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं। कुछ परिवर्तन तो हमारे लोकतंत्र को मजबूती प्रदान कर रहें हैं लेकिन इसके साथ ही कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ भी उभर रहीं हैं जो हमारे लोकतंत्र के लिए घातक है। एक तरफ जहाँ हमारे प्रौढ़ होते लोकतंत्र में बहु–सांस्कृतिक संघीय व्यवस्था न केवल संरक्षित है बल्कि उत्तरोत्तर सफलता के नये–नये कसीदे गढ़ रहा है तो दूसरी ओर केन्द्रीय कार्यपालिका और कुछ राज्य कार्यपालिका द्वारा ऐसे कृत्यों को अंजाम दिया जा रहा है जो संघीय ढांचे के अनुरूप नहीं हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मंत्रिमंडल (कैबिनेट) की तानाशाही स्थापित हो गयी है। पिछले दिनों खुदरा व्यापार के विदेशीकरण में ऐसा ही हुआ। ऐसा लगता है कि संसद में किसी बात पर सर्वसम्मति तो अतीत की बात हो गयी है। सत्ताधारी दल के साथ–साथ विपक्ष की भूमिका में भी गिरावट आयी है। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि अब केन्द्रीय मंत्रालय की आवंटन योग्यता एवं आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं किया जा रहा है बल्कि आगामी विधानसभा चुनाव को ध्यान में रखकर किया जा रहा है। अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संघवाद को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए आवश्यकता इन कमियों का दूर कर सहयोगात्मक रुख अपनाने की है।

## संदर्भ सूची

1. Kothari, Rajni (1964) The Congress System in India, *Asian Survey,* Vol- 4, No. 12, December, p.1161-1173.
2. मुरारी, कृष्णा (2012) ''संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का संघीयकरण'' *लोकप्रशासन,* जुलाई–दिसम्बर, वर्ष 4, अंक 2, पृ. 410।
3. Singh, M.P. and Saxena, Rekha (2008) *Indian Politics: Contemporary Issues and Concerns,* New Delhi: Prentice Hall of India, p. 139.
4. सिंह, एम.पी. (2006) 'संसदीय संघवादी व्यवस्था में संघात्मकता का बढ़ता प्रभाव', *समयांतर,* फरवरी, वर्ष 37, अंक 5, पृ. 71।
5. सिंह, एम. पी. (2012) ''भारतीय शासन पद्धति में संघात्मकता का दौर'', लोक प्रशासन, जुलाई–दिसम्बर, वर्ष 4, अंक 2, पृ. 152, 157।
6. Where, K. C. (1964) *Federal Government, New York:* Oxford University Press, Fourth Edition.
7. Verney, Douglas V. (2003) "From quasi-federation to quasi-confederacy? The transformation of India's Party System", *The Journal of Federation,* Vol. 33, No. 4, Fall, pp. 153&71.

********